मन न माना

एम. पी. कमल

Copyright © 2019, M. P. Kamal
All rights reserved.

No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or any information storage and retrieval system now known or to be invented, without permission in writing from the publisher, except by a reviewer who wishes to quote brief passages in connection with a review written for inclusion in a magazine, newspaper or broadcast.

Published in India by Prowess Publishing,
YRK Towers, Thadikara Swamy Koil St, Alandur, Chennai,
Tamil Nadu 600016

ISBN: 978-93-89097-31-3

Library of Congress Cataloging in Publication

CONTENTS

Chapter 1 1

Chapter 2 14

Chapter 3 27

Chapter 4 42

Chapter 5 55

Chapter 6 72

Chapter 7 87

Chapter 8 110

Chapter 9 124

Chapter 10 137

Chapter 11 154

Chapter 12 167

Chapter 13 177

Chapter 14 196

Chapter 15 214

Chapter 16 226

Chapter 17 241

Chapter 18 260

Chapter 19 272

Chapter 20 284

कल से खाना नहीं खाया था संदीप ने, दीप्ति के विदा होते ही वह टूट गया था। कितना प्यार था उसे दीप्ति से, दीप्ति के साथ रहते वह ठीक से अहसास नहीं कर पाया था, पर कल जब मनोज से शादी करके दीप्ति घर से विदा हुई और संदीप उसे ट्रेन में बिठाने के बाद अपने कमरे पर लौटा तो उसे लगा कि उसका सब कुछ मनोज के साथ चला गया है। उसका संसार उजड़ गया है, जीवन नष्ट हो गया है। मन रो रहा है और शरीर जैसे संज्ञा-शून्य हो गया है।

रात भर भावनाओं के झंझावात से लड़ता रहा था संदीप। एक पल को भी नहीं सो सका था वह। रह-रह कर उसे यह बात गहरी चुभ रही थी कि उसने दीप्ति से अपने मन की बात क्यों नहीं कही। क्यों नहीं बताया उसने दीप्ति को कि वह उसे इतना प्यार करता है...इतना प्यार करता है कि उसके बिना जी नहीं पायेगा...रो-रो कर मर जायेगा। क्यों नहीं कहा उसने दीप्ति से कि वह शादी से इन्कार कर दे और कह दे अपने माता-पिता से कि वह शादी नहीं कर सकती...वह शादी करके संदीप से दूर नहीं जाना चाहती। वह संदीप की है और सदा संदीप की ही रहेगी।

पूरी रात वह आहत मन की पीड़ा से छटपटाता रहा और आंसू बहाता रहा। कभी जोर-जोर से सिसकने लगता, बैठा हो जाता और दहाड़ मार कर रोने लग जाता...कभी तकिये में मुँह देकर आहें भरता, कभी असह्य पीड़ा से दुखी होकर दोनों हाथों से अपने बाल खींचता और कातर स्वर में चीखता।

उसे पता नहीं लगा कि कब दिन निकला और सूरज चढ़ आया। न उसने कुछ खाया न पिया...न वह उठकर बाथरूम गया।

पीड़ा...पीड़ा और पीड़ा...बस पीड़ा ही झेल रहा था वह, पीड़ा ही खा रहा था... पीड़ा ही पी रहा था...समझ गया था कि अब पीड़ा ही उसकी चिर-सहचरी रहेगी... कोई उसका साथ नहीं निभायेगा पीड़ा के सिवाय।

यकायक दरवाजे पर दस्तक हुई–"थप-थप...थप-थप।"

चौंककर उसने तकिये से मुँह हटाया और गर्दन मोड़कर दरवाजे की ओर देखा, और फिर उसी तरह पड़ गया। जी नहीं हो रहा था कि किसी से मिले...होगा कोई...होने दीजिए...अब अपना तो कोई रहा ही नहीं...फिर किसी से क्यों मिलना?

"थप-थप...थप-थप"। उसी लय में फिर वही थपथपाहट। संदीप बैठा हो गया। आंखों से बह रहे आंसू पास पड़ी तौलिया में समेटे...उठा और शीशे के सामने पहुँच कर बुरी तरह छितरे बाल जल्दी-जल्दी बिना कंघे के ही ठीक किये और दरवाजे के पास पहुँचते हुए उसने दरवाजा खोला।

"मधु...तुम!...इतने सबेरे...?"

"सबेरा नहीं है अब...किस दुनिया में खोये थे...और-और यह क्या हालत बना रखी है...क्या रात भर सोये नहीं?"

एक साथ इतने प्रश्न दाग दिये मैंने और हक्की-बक्की सी संदीप को देखती रह गई।

सिलेटी रंग के सफारी सूट में संदीप बिल्कुल बदला-बदला सा लग रहा था–कमजोर और बीमार सा...मानों रात ने उसे निचोड़कर रख दिया हो।

"संदीप! क्या हुआ है तुम्हें...रात को सोते समय तुमने कपड़े भी नहीं बदले... जिस सूट में दीप्ति दीदी को छोड़ने रेलवे स्टेशन गये थे, वही पहने रहे हो रात भर...और यह चेहरा...क्या तुम रोते रहे हो रात-भर...पर क्यों...क्यों...?" काली जीन्स और सफेद स्कर्ट में स्मार्ट व ताजा खिले गुलाब सी लग रही लम्बे खुले बालों वाली गोरी और खूबसूरत मैं आगे बढ़ी और संदीप के गले में अपनी गोरी-गोरी बांहें डाल दीं।

सत्रह वर्ष की थी मैं, इसी वर्ष इंटर की परीक्षा पास की थी और इंग्लिश ऑनर्स लेकर यूनिवर्सिटी में प्रवेश कर गई थी। उठाऊ शरीर वाली लम्बी काठी थी। सौंदर्य की साकार प्रतिमा सी, रूप की राशि छिटकी पड़ रही थी। मेरे क्वारे बदन

से निश्रित सुष्मित मादक गंध ने संदीप के अस्त-व्यस्त पड़े कमरे को महका दिया था और पीड़ा से पस्त संदीप के युवा शरीर में नई ऊर्जा का संचार कर दिया था। पर इस समय उसे यह सब अच्छा नहीं लग रहा था। दीप्ति के विरह की वेदना को अपने हृदय की गहराइयों में समेटे संदीप दीप्ति-मय हो गया था...वह नहीं चाहता था कि कोई उसे अपनी चिर प्रेयसी से अलग करे।

"मधु प्लीज़!" अंदर तक आहत संदीप ने कहा– "मुझे इस तरह...प्लीज़ तुम समझती क्यों नहीं...किसी ने देख लिया तो...।"

"देख लेने दो...मैं नहीं डरती किसी से...दीप्ति नहीं हूँ मैं... मधु हूँ मधु...।"

"मतलब...?" चौंककर संदीप ने मेरे चेहरे पर देखा–इतनी सुन्दर...इतनी अपीलिंग लग रही थी मैं कि सामना नहीं कर सका संदीप मेरी खुली आंखों का। अपने आपको छुड़ाते हुये पीछे हट गया, दरवाजा अंदर से बंद किया और सामने पड़ी बड़ी मेज के दोनों ओर लगी दो कुर्सियों में से एक पर जा बैठा।

निगाहें मेज पर बिछे फूलों वाले मेज-कवर के एक फूल पर टिकाये बैठे संदीप के सामने मेज की दूसरी ओर पड़ी कुर्सी पर बैठते हुये मैं बोली–"जानती हूँ संदीप...तुम आज बहुत दुखी हो...तुम्हारे दुख का कारण भी जानती हूँ मैं और शायद उसके निराकरण का उपाय भी।"

"मधु, तुम होश में तो हो...?" संदीप ने निगाहें मेरे चेहरे पर गढ़ानी चाहीं, पर चेहरे पर छिटकी मादकता की धार इतनी तीखी थी कि सह नहीं सका संदीप और उसने जल्दी ही नजरें हटा लीं और उसी तरह फिर मेज कवर के फूल में गढ़ा दीं।

"मैं पूरी तरह होश में हूँ।" कहते हुये मैंने अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ाया और मेज पर रखे संदीप के बांये हाथ पर रखना चाहा...पर संदीप ने हाथ हटा लिया।

"देखो संदीप"। मैंने अपनी आवाज में सहानुभूति घोलते हुये कहा–"दीप्ति दीदी अब किसी की हो चुकी हैं...उनके लिए यूं छुप-छुप कर रोने से क्या होगा...उन्होंने तुम्हारी आंखों के सामने मनोज जीजू से शादी की है और तुमने हम सबके साथ मिलकर दीदी को विदा भी किया है...फिर अब यह विछोह की पीड़ा क्यों?"

"तुम जानती हो मधु...।"

बीच में ही मैं बोली, "हां! मैं जानती हूँ कि तुम दीदी को बहुत चाहते थे...जब साथ थीं, तब तुम अपने मन की बात तक उनसे नहीं कह पाये...और अब जब वे शादी करके अपनी ससुराल चली गई हैं तब तुम्हें अहसास हो रहा है कि तुमसे बहुत बड़ी भूल हुई है। तुम उन्हें इतना प्यार करते हो कि उनके बिना रह नहीं सकते...पर...पर...?"

"मधु...!" सिसक पड़ा संदीप। अपना चेहरा उसने अपनी दोनों हथेलियों में छुपा लिया और कुहनियाँ मेज पर टिकाकर चेहरे को थाम लिया।

मैं अपनी कुर्सी से उठी और संदीप के ठीक पीछे जा पहुँची।

"मत रोओ संदीप...मैं तुम्हें इस तरह दुखी नहीं देख सकती।" कहते हुये मैंने पीछे से अपनी दोनों बांहें संदीप के दोनों कंधों पर रखीं और हाथों को आगे लाते हुये संदीप का चेहरा अपनी हथेलियों में ले लिया। मेरी उंगलियां संदीप के आंसुओं से भीग रही थीं, वह कुर्सी पर सीधा बैठा हो गया था और मैं अपनी उंगलियों में संदीप के आंसू समेट रही थी और उसे सांत्वना दे रही थी।

धीरे-धीरे संदीप की सिसकियां थमने लगीं और आंसुओं का स्खलन भी कम होने लगा।

संदीप को इस तरह छूने से मेरे शरीर में स्फुरण की अनुभूति होने लगी थी और संदीप को ऐसा लगने लगा था जैसे मैं धधकती विरह ज्वाला पर भरपूर रेत डाल कर उसे काबू में करती जा रही हूँ।

"अब मैं ठीक हूँ मधु...प्लीज़ तुम बैठ जाओ।" मेरे हाथों को अपने चेहरे से हटाने का प्रयास करते हुये संदीप उठ खड़ा हुआ।

ज्यों ही संदीप कुर्सी छोड़कर मेरे निकट पहुँचा, मैंने उसे अपनी बांहों में भर लिया और इतना कसकर आलिंगन किया कि मेरे उरोजों के उभारों का गुदाज व मादक स्पर्श संदीप अपने सीने पर महसूस करने लगा। उसके दिल की धड़कनें बढ़ने लगीं और पूरा शरीर रोमांचित हो गया।

दीप्ति के विरह की अग्नि में झुलसा संदीप का युवा शरीर अब जलन से मुक्त होने लगा था और विचित्र से सुखद अहसास की तरंगें उसमें ताजगी भरती जा रही थीं।

"दीप्ति दीदी को भूल जाओ संदीप...।" आलिंगन-बद्ध अवस्था में मैं बड़बड़ाई–"स्त्री के विरह की ज्वाला पुरुष को जला कर राख कर डालती है।"

"मधु...!" संदीप के मुँह से निकला और वह मुझे अपने से अलग करने लगा। "मेरी आग में मत जलो मधु...मुझे अकेले ही जलने दो।" कहते हुये संदीप ने मुझे उस कुर्सी पर बैठा दिया जिस पर वह स्वयं बैठा था और चलकर सामने वाली कुर्सी पर जा बैठा।

"कोई किसी की आग में क्यों जलता है...जानना नहीं चाहोगे संदीप?" कहते हुये मैंने अपनी दीवानगी भरी निगाहें संदीप के चेहरे पर गढ़ा दीं।

एक ऐसी कशिश थी मेरी निगाहों में कि संदीप को लगा वह पिघल जायेगा। उसने आंखे झुका लीं और मेज कवर के फूलों को दाहिने हाथ की उंगलियों से छूता हुआ बोला–"मधु तुम बहुत अच्छी लड़की हो...अपनी भावनाओं पर काबू रखो प्लीज़!"

"एक शर्त पर।" मैंने दाहिने हाथ की हथेली खोलते हुये मेज पर रख दी।

"अपना दायाँ हाथ आगे लाओ और मेरे हाथ पर रखकर वादा करो...तुम दुखी नहीं होगे।"

"मधु...प्लीज़, सम्हालो अपने आप को।" संदीप की आवाज में थोड़ी तल्खी आ गई थी।

"मैं बहक नहीं रही हूँ संदीप...मेरा विश्वास करो।" आवाज में दृढ़ता लाते हुये मैं बोली, "तुम्हारी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ा रही हूँ, उसे थाम लो...सच मानो...बस दोस्ती और कुछ नहीं...मैं जानती हूँ कि तुम दीदी को बहुत प्यार करते हो...उनकी विरह-वेदना को अपने सीने से अलग करना नहीं चाहते हो। पर सोचो संदीप... मेरा भी तो तुम्हारे प्रति कोई फर्ज बनता है...ऐसे कैसे मैं तुम्हें धू-धू करके जलता देख सकती हूँ। इंसानियत भी तो कोई चीज होती है। तुम एक अच्छे इन्सान हो...बहुत प्यारे...बहुत बुद्धिमान और महत्वाकांक्षी...तुम्हारे माता-पिता ने तुम पर कितनी आशाएं टिका रखी होंगीं...तुम्हारी अपनी कितनी ही ख्वाहिशें होंगीं...क्या मैं इतनी कठोर हो जाऊँ कि तुम्हारे माता-पिता की उम्मीदों और तुम्हारी ख्वाहिशों को अपनी आंखों के सामने फना होते देखती रहूँ...उन्हें बचाने के लिए कुछ न करूँ...इंसानियत के नाते भी नहीं...दोस्ती के नाते भी नहीं।"

"मधु...!" भावविभोर होकर संदीप ने मेरे चेहरे पर देखा। अब मैं उसे एक फरिश्ता लग रही थी। एक ऐसा फरिश्ता जो संदीप को दर्द के दरिया में डूबने से बचाने के लिए उसके कमरे पर जा पहुँचा हो।

उसने अपना दाहिना हाथ बढ़ाया और हथेली खोलते हुये मेरी खुली हथेली पर रख दी—"तुम्हारे साथ दोस्ती मुझे मंजूर है मधु! तुम जैसी खूबसूरत दिलवाली लड़की को आज अपने दोस्त के रूप में पाकर मैं गद-गद हूँ...गौरवांवित हूँ...सच मानों अब मैं तुम्हारी हथेली से अपनी हथेली का स्पर्श कर रहा हूँ तो मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मेरे शरीर में एक अलौकिक आनंद का संचार हो रहा है...तुमने मुझे बचा लिया मधु...यह अहसान मैं जीवन भर नहीं भूल पाऊँगा।"

"तुमने मेरी दोस्ती का प्रस्ताव स्वीकार किया है संदीप!" अपनी हथेली को संदीप की हथेली में कसती हुई मैं बोली—"दोस्ती में अहसान जैसे शब्द के लिए कोई जगह नहीं होती। जब दोस्त कहा है तो दोस्ती के मूल्य को भी समझो... वचन दो अपनी दोस्त को कि आज के बाद कभी छुप-छुपकर नहीं रोओगे। मैं जानती हूँ कि जो दर्द तुम्हें दीप्ति दीदी ने दिया है, उसे तुम्हारे दिल से निकाल पाना असम्भव के बराबर कठिन है। तुम्हारा पहला प्यार थीं दीदी...कोई भी अपने पहले प्यार को नहीं भुला सकता...तुम भी नहीं भुला पाओगे...पर मैंने आज तुम से जो रिश्ता कायम किया है...दोस्ती का रिश्ता...उस रिश्ते से बँधी मैं तुम्हारी आंखों में आंसू नहीं देख पाऊंगी; अतः मुझसे वादा करो कि अब कभी छुप-छुप कर आंसू नहीं बहाओगे... दिल में दर्द हो और सह न पाओ तो मेरे पास आ जाना...एक सच्चे दोस्त की तरह मैं तुम्हारी आंखों के आंसू अपने हाथों से पोछ डालूंगी और तुम्हारे दिल की पीड़ा को अपने दिल में उतार लूंगी।"

"मधु...!" संदीप ने मेरी हथेली को अपनी हथेली में जोर से दबाया और बोला—"दोस्ती की कसम...आज के बाद मैं अपनी पीड़ा तुम्हारे साथ बांटूगा...वादा करता हूँ...मैं दुखी नहीं होऊँगा...यदि कभी मन न माना तो मैं तुम्हें पुकारूंगा...तुम चली आना और मुझे अपनी बांहों का सहारा दे देना या फिर अपनी गोद में सिर रखकर रोने की अनुमति दे देना।" कहते-कहते रो पड़ा संदीप।

"देखो-देखो...तुमने तो वादा करते ही वादा तोड़ दिया।" अपना हाथ खींचते हुये मैं उठ खड़ी हुई।

"वादा तोड़ा नहीं...वादा निभाया है।" आंसू पोंछते हुये संदीप बोला, "तुमने वादा लिया था कि मैं छुप-छुप कर नहीं रोऊँ...इसीलिए तुम्हारे सामने रो रहा हूँ...अब आगे बढ़ो और अपना वादा निभाओ।"

"कौन सा वादा...?" मैंने अनजान बनते हुये संदीप के चेहरे पर देखा।

"अपना वादा भूल गईं मधु...मैंने तुमसे वादा लिया था कि जब-जब मैं अपने मन की पीड़ा नहीं सह पाऊंगा और तुम्हें पुकारूंगा तो तुम चली आना और मुझे सहारा देना। मुझे अपनी बांहों में भर लेना या फिर अपनी गोद में लेट कर रोने की अनुमति दे देना।"

"रोने की अनुमति तो मैं देने से रही।" मैं शरारत से मुस्कुराई।

"तो फिर...?" संदीप के मुँह से निकला।

कुर्सी से अलग होते हुए मैंने अपनी बांहें फैला दीं। संदीप दौड़कर आया और मेरी बांहों में समा गया। फिर वही गर्म-गर्म सांसों का संगम और मेरे युवा उरोजों की संदीप के युवा सीने पर दबाव भरी छुअन।

संदीप से दोस्ती का हाथ मिलाकर और उससे अकेले में दुखी न होने का वचन लेकर उस दिन संदीप के कमरे से चली आई थी।

यद्यपि आज मैं बहुत खुश थी क्योंकि दो वर्ष के अथक प्रयासों और लगातार भावनात्मक ऊहापोहों से गुजरने के बाद आज मुझे पहली बार संदीप की निकटता पाने और उसे सीने से लगाकर भींचने का रोम-रोम स्पंदित कर देने वाला अवसर प्राप्त हुआ था।

दो वर्ष पहले जब संदीप पहली बार हमारे घर आया था तो दीदी ने आगे बढ़कर उसे अपने प्रभाव में ले लिया था और मैं मन मसोस कर रह गई थी। मैंने हाई स्कूल पास किया था और ग्यारहवीं में पढ़ रही थी, दीदी इंटर पास करने के बाद हिस्ट्री ऑनर्स कर यूनिवर्सिटी चली गई थीं।

उन दिनों दीदी मुझे गिनती ही नहीं थीं। दो बहनों वाले हमारे घर में बड़ी होने की वजह से दीदी की ही चलती थी। पापा, मम्मी दोनों सदा दीदी की ही बातें करते थे। हमारी दीप्ति लाखों में एक है। जैसी सुन्दर है, वैसी ही गुणवान भी है।

उसकी आदतें बहुत अच्छी हैं, उसका व्यवहार बहुत अच्छा है। इतनी मिलनसार है कि जो भी उससे एक बार मिल लेता है, उसका बार-बार मन करता है कि उससे मिले। उसकी वाणी में इतनी मिठास है कि बोलती है तो ऐसा लगता है मानों चांदी की घंटियां बज रही हों, हँसती है तो जैसे फूल झड़ रहे हों। उसकी आवाजों से घर गूंजता रहता है।

एक यह है मधु जो नाम की तो मधु है पर इसके स्वभाव में कांटों की चुभन है। बोलती ही नहीं, चुप रहती है। मुँह सुजाये रहती है, मानों घर के सब लोगों से इसे शिकायत ही शिकायत है। पता नहीं कैसे यह हाई स्कूल में फस्ट डिवीजन ले आई, न हेंडराइटिंग में कोई सुन्दरता है, न बोली में, न मन में। अजीब सी लड़की भेज दी है भगवान ने हमारे घर में जो चुप्पी का साम्राज्य बनाये रखना चाहती है। खायेगी तो अलग बैठकर, पियेगी तो अलग बैठकर, पढ़ेगी तो अलग बैठकर। बड़ी बहन से इतनी चिढ़ती है कि उसे फूटी आंख नहीं देखना चाहती। वह चाहती है कि इसे पढ़ाये पर यह भला उससे क्यों पढ़ने लगी, उसे ऐसे घूरती है जैसे उससे कोई दुश्मनी पाले हो।

छोटा भाई इतना कहता है कि बहन मुझे पढ़ा दे, मेरा पाठ सुन ले, मेरे साथ खेल ले, मेरी मदद कर दे, मेरे साथ यहाँ चली चल, मेरे साथ वहाँ चली चल। पर मजाल क्या कि यह महारानी उसकी कोई मदद कर दे। उससे बात तक नहीं करना चाहती यह, मदद करना तो दूर, उससे इतनी चिढ़ती है कि कभी साथ बैठना भी पसंद नहीं करती।

मम्मी और पापा की मेरे बारे में यह धारणा गलत नहीं थी। मैं सचमुच ऐसी ही हो गई थी। यद्यपि मैं जानती थी, मेरा असली व्यवहार वह नहीं था जो घर में मैं दूसरों के साथ करती थी। मैं तो सुन्दर कल्पनाओं को संजोने वाली सुकुमार लड़की थी। फूल की पंखुड़ियों सी कोमल, नयी कोंपलों सी पुलकित, प्रमुदित एवं प्रफुल्लित, तितली सी थिरकने की कामना रखने वाली और मोर की तरह नृत्य करने के अरमान रखने वाली मैं इस घर में छोटी बहन होने का अभिशाप झेल रही थी।

घर में जो भी चीज आती, दीप्ति दीदी का नाम पुकारा जाता, घर में कोई मेहमान आता तो उसकी आवभगत करने का जिम्मा दीप्ति दीदी को सौंपा जाता, सब यही समझते थे कि मधु तो गोबर-गणेश है, इसे न कोई तमीज-तहजीब है, न कुछ आता-जाता है।

दीप्ति दीदी की सहेलियों से घर भरा रहता था। एक जाती तो दो और आ जाती थीं। दिन भर हँसी-ठट्टा, चुटकुले-बाजी, खाना-पीना और मस्ती ही मस्ती।

मैं कभी बीच में दिख जाती तो दीदी कहतीं—यह अभी छोटी है, यह हमारी बातें नहीं समझ सकती। इसे शामिल करने से सारा मजा किरकिरा हो जायेगा। इसे न हँसना आता है, न बातें करना। बोर करेगी बोर। एक नम्बर की चौपट और बोर है यह, तभी तो इसकी कोई सहेली भी इससे मिलने नहीं आती।

पर सच इसके विपरीत था। मैं बहुत मिलनसार थी, खुश मिजाज और बातूनी थी पर मुझे कोई मौका देता तब न। मेरे मुँह पर जो ताले लटके थे, वे मैंने नहीं लटकाये थे, दीदी ने, मम्मी ने, सभी घरवालों ने मिलकर मेरे मुँह पर ताले जड़ दिये थे और सब मिलकर मुझे बदनाम करने में लगे रहते थे। जिसे सुन-सुनकर मैं और वैसी ही होती जा रही थी, जैसी वे मुझे बता रहे थे।

इसी अंतराल में एक दिन संदीप को लेकर पापा घर आ पहुँचे। आते ही घर में घुसते हुये बोले—"आओ बेटा संदीप, मैं तुम्हें अपनी बेटी दीप्ति से मिलवाता हूँ। मिलोगे तो तबीयत खुश हो जायेगी, इतनी खुश-मिजाज लड़की तुमने कभी देखी भी नहीं होगी, जितनी मेरी बेटी दीप्ति है। वैसे तो मेरी एक और बेटी भी है मधु, पर वह बड़ी संकोची है, कम बोलती है, और कम हँसती है, पता नहीं क्यों उसे अकेले रहना अच्छा लगता है, जबकि दीप्ति सबसे दिल खोलकर मिलती है और अपने व्यवहार और बातों से सबके दिलों में अपने लिए जगह बना लेती है।"

जैसे ही मैंने पापा के ये शब्द सुने, मेरा मन खिन्न हो गया। भागकर आई थी मैं अन्दर से पापा की आवाज सुनकर, और संदीप पर ज्यों ही मेरी नजर पड़ी थी, मेरे शरीर में एक लहर सी दौड़ गई थी। कितना सुन्दर लड़का, कितना स्मार्ट और आकर्षक। मैं तो बस देखती ही रह गई थी। मैं नहीं चाहती थी कि पहली ही नजर में संदीप को देखने के बाद मेरे मन पर जो प्रतिक्रिया हुई है, उसे कोई जाने, अतः मैं आढ़ लेकर खड़ी हो गई। मैं ऐसी जगह खड़ी थी कि मेरी आंखें संदीप पर टिकी थीं पर वह मुझे नहीं देख सकता था, कोई और भी मुझे नहीं देख सकता था, अतः मैं निश्चिंत होकर संदीप की सुगठित शरीर संरचना का आनंद ले रही थी और पापा की अपने प्रति प्रतिक्रिया सुन-सुन कर अब भी तुनक रही थी। जब मैं यह समझ गई कि पापा संदीप को मुझसे मिलवाने की तनिक भी इच्छा नहीं रखते हैं, वे उसे दीप्ति दीदी से मिलवाने लाये हैं तो मेरे मन

में एक टीस उठी–क्या मैं सचमुच ऐसी ही हूँ जैसी पापा मुझे बता रहे हैं, क्या सचमुच सारे गुण दीप्ति दीदी में ही हैं, मुझमें एक भी गुण नहीं। क्या सचमुच दीप्ति दीदी ही मम्मी की, पापा की और सब मिलनेवालों की चहेती हैं, मैं किसी की चहेती नहीं?

तो फिर मैं आगे बढ़कर संदीप का स्वागत क्यों करूँ? एक अजनबी लड़का पहली बार घर आया है और पापा ने मेरे बारे में उसके दिमाग में यह तस्वीर डाल दी कि मधु एक बेकार लड़की है, तो फिर मैं अब अच्छी बनकर ही क्या करूंगी। मैं बाहर न निकल कर और अंदर चली गई। अंदर वाले कमरे में घुसते ही दरवाजा अन्दर से बंद कर सिसकती हुई बिस्तर पर गिर गई और बहुत देर तक अकेले में यूं ही रोती रही।

जबकि बाहर घर के सब लोग संदीप के साथ बातें कर रहे थे और अपना-अपना परिचय दे रहे थे। दीप्ति दीदी भी ऊपर वाले कमरे से उतर कर नीचे आ पहुँची थीं और अपनी चांदी की घंटियों सी आवाज से और फूलों सी हँसी से संदीप का मन मोह रही थीं।

मैं अन्दर दुबकी कुढ़ रही थी, सिसक रही थी, रो रही थी। संदीप मुझे बहुत अच्छा लगा था, पर उसका प्रथम परिचय दीदी से करवाया जा रहा था। संदीप और दीदी के साथ-साथ हँसने की आवाजें जब मेरे कानों में पड़ीं तो मैं बुरी तरह जल-भुन गईं। लो हो गया परिचय। दीदी की अब संदीप से दोस्ती हो जायेगी। पहले दोस्ती होगी फिर प्यार हो जायेगा और...और फिर...पता नहीं क्या-क्या ऊल-जलूल विचार मेरे ज़हन में उभरने लगे थे। पर इन सबसे भी अधिक मजबूत यह विचार था कि संदीप के सामने मेरी गलत तस्वीर क्यों खींची गई और मेरे से न मिलवाकर संदीप को दीप्ति दीदी से ही क्यों मिलवाया गया? ईर्ष्या और जलन की अग्नि में धू-धू जल रही मैं मूर्ख यह भी नहीं समझ पा रही थी कि जब दीदी सामने जा पहुँची हैं तो परिचय तो उनका ही कराया जायेगा। मैं पहुंच जाती तो मेरा भी परिचय कराया जाता। हो सकता है संदीप मुझे देखता तो पसंद करता। उसके मन के किसी कोने में मेरे लिए जगह बनती, पर दीदी के होते मुझे पूछता कौन है। वे जब सामने आ जाती हैं तो वे ही छा जाती हैं। मैं तो एक बंद लड़की हूँ, बंद और चिड़चिड़ी। उपेक्षा का दंश पाकर और भी अधिक बंद और चिड़चिड़ी हो जाती हूँ।

उसी समय मम्मी की आवाज मेरे कानों में पड़ी। वे मुझे नाम लेकर पुकार रही थीं–"अरे मधु...! कहाँ है तू, तनिक बाहर निकलकर तो आ, देख घर में कौन आया है।"

मम्मी आवाज लगा रही थीं। मन में शिकायत पाले थी, पर जाना तो बनता था। मम्मी बुला रही थीं और मन में संदीप को निकट से देखने और उसका परिचय पाने की इच्छा अंकुरित हो चुकी थी।

मैं बाहर निकल आई। चुप-चुप... सहमी-सहमी सी। उस दिन हरे रंग का सूट पहन रखा था मैंने। ज्यों ही मैं बाहर निकली, पापा बोल उठे–"यह आ गया हमारा हरियल तोता...वैसे तो बहुत मीठा बोलता है हमारा तोता पर चुप रहना इसे बहुत अच्छा लगता है। लो इससे बात करो संदीप, यह मेरी छोटी बेटी है मधु...तुम्हारे आने की बात सुनकर जरूर यह अन्दर जा छिपी होगी, बड़ी संकोची है हमारी छोटी बेटी पर पढ़ने में बहुत होशियार और अपनी धुन की पक्की है। एक बार जो मन में ठान लेती है, उसे करके ही रहती है।"

"हैलो!" कहते हुये संदीप ने अपना हाथ मेरी ओर बढ़ाया था। मैंने हिम्मत जुटाई थी कि हैलो कहते हुए अपना दाहिना हाथ आगे करूँ और संदीप चाहे तो उससे हाथ मिला लूँ, परन्तु उसी समय दीदी खिलखिलाकर हँस पड़ीं। संदीप ने भी हँसी में दीदी का साथ दिया और वह मेरी ओर देखते-देखते यकायक दीदी की ओर देखने लगा, मानो दीदी की हँसी ने संदीप पर अपना जादू चला दिया हो।

मैंने अपना हाथ वहीं का वहीं रोक लिया और दोनों हाथ जोड़ते हुये बोली–"नमस्ते।" "नमस्ते मधु जी।" संदीप दीदी की हँसी के जादू से मुक्त हुआ और उसने मेरी ओर देखते हुये कहा–"आपसे मिलकर बहुत अच्छा लगा। कितनी सधी हुई मुस्कान है आपकी और कितना शालीन व्यवहार।"

"हें।" पापा और मम्मी के मुँह से एक साथ निकला और दोनों की निगाहें मेरी तारीफ कर रहे संदीप के चेहरे पर जा टिकीं। मानों कह रहे हों अरे यह क्या हुआ। मधु तो बाजी मार ले गई। उसी समय एक बार फिर दीप्ति दीदी खिलखिला कर हँस पड़ीं और उनकी हँसी ने सबका ध्यान अपनी ओर खींच लिया।

सबके सामने मेरी हार हो गई थी और दीदी जीत गई थीं। दीदी की हँसी का जादू, उनके रूप सौंदर्य का जादू संदीप के मन से लिपट गया था। यह शायद प्रथम दृष्ट्या प्यार था जिसकी डोर में लिपटा संदीप दीप्ति दीदी के व्यक्तित्व में समा गया था और उसका एक हिस्सा बन बैठा था।

उसी दिन यह फैसला ले लिया गया था कि दीप्ति दीदी को पढ़ाने के लिए संदीप एक घंटा प्रतिदिन निकालेगा और दीप्ति दीदी अपनी मधुर मुस्कान और मोहक व्यक्तित्व के पाश में उसे बांधते चले जाने का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देंगीं।

मुझे बंद और संकोची लड़की बताकर एक कोने में खड़ाकर दिया गया और सख्ती से आदेश जारी कर दिया गया कि छोटे भाई को पढ़ाना मेरी जिम्मेदारी होगी। मैं चाहूँ तो बड़ी बहन से पढ़ सकती हूँ, पर इसके लिए मुझे उन्हें भाव देना होगा, उनकी बात माननी होगी, उनके प्रति आदर-भाव दिखाना होगा, और खुश रहने की कला दीदी से सीखनी होगी।

कहावत है–'न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी'; न दीदी के प्रति मैं यह सब कर पाई, न दीदी मुझे पढ़ा पाईं।

मैं संदीप को मन ही मन चाहने लगी थी और मेरी यह चाहत मेरे मन के एक कोने में दुबककर बैठ गई थी।

मैं जानती थी कि दीदी के व्यक्तित्व में एक ऐसा जादू है कि अब संदीप उससे बाहर नहीं आ पायेगा। दीदी और संदीप की निकटता दिन-दिन बढ़ती जायेगी और फिर एक दिन प्यार में बदल जायेगी।

मैं नहीं चाहती थी कि ऐसा हो। यह सोचकर मुझे बहुत चोट पहुँचती थी कि दीदी और संदीप बंद कमरे में एक घंटे तक एक साथ बैठेंगे और एक दूसरे के दिलों में जगह बनाते जायेंगे।

पर मैं अन्दर ही अन्दर जलते रहने के अलावा कुछ और न कर सकी। जब वे दोनों एक कमरे में होते थे तो जी करता था कि मैं किसी बहाने यकायक अन्दर जाऊँ और देखूँ कि वे क्या कर रहे हैं, कैसे कर रहे हैं। क्या दीदी संदीप की आखों में देख रही हैं या संदीप दीदी की आंखों में झाँक रहा है।

अनेक बार मुझे ऐसा अवसर मिला। मैं जब-जब अन्दर गई, मैंने देखा दोनों के चेहरों पर नया नूर था, दोनों इतने खुश लग रहे थे, मानो उन्हें वह सब कुछ मिल गया है जिसकी उन्हें तमन्ना रही होगी।

संदीप खूब बन-सँवर कर आता था, दीदी भी खूब बन-सँवर कर रहती थीं। दोनों एक दूसरे को बहुत कुछ दे रहे थे, दोनों एक दूसरे से बहुत कुछ ले रहे थे, दोनों एक दूसरे को समझ रहे थे और हर दिन अपने बीच अपनत्व का पुल बनाते जा रहे थे। यह पुल कब इतना मजबूत हो गया कि भावनाओं का पूरे का पूरा सैलाब इस पर से गुजरने लगा, यह कोई न जान सका। संदीप पढ़ाता रहा, दीदी पढ़ती रहीं और दोनों के बीच प्यार हो गया।

You've Just Finished your Free Sample

Enjoyed the preview?

Buy: https://store.prowesspub.com